वीतरागीको, सुन्दरता देखकर मुग्ध होजानेवाले हृदयमें क्योंकर बैठा सकूंगा ? हे स्वामी ! मुझे विश्वास है कि मैं सब तरह आपकी कृपाका पात्र नहीं हूं। पर हे गुरो ! क्या मुझ अपात्रको अपात्र ही रहने दोगे ? मुझे पूर्ण श्रद्धा है कि मेरे मलिन हृदयको भी आपका नाम पवित्र बनायगा। मुझे भरोसा है कि आपके गुणोंका स्मरण ही मुझे निरभिमानी बनायगा। मुझे प्रतीति है कि आपकी क्षमा भरी दृष्टि ही मुझे क्रोधका छोड़ना सिखायगी। मुझे विश्वास है कि आपकी शान्त भावना ही मेरे हृदयमें वैराग्य उत्पन करेगी और आपका दर्शन मेरे हृदयको पवित्र करेगा। आप यहां पधारेंगे तब सब इष्ट वस्तु स्वयं प्राप्त हो जायगी। हे संसारके अकारणबन्धु ! आपकी यह अकारण प्रवृत्ति हमें भी निष्काम सेवा करना सिखायगी। हम भी फिर आपके अनुसार चलकर परोपकारके लिए अपने जीवनका हिस्सा अर्पण कर सकेंगे। जब हमारे हृदयमें निष्काम वृत्ति जागृत होगी तब हम समझेंगे कि हृदय शुद्ध करनेका उपाय हमें मिल गया। आप ज्योतिस्वरूप हो। इसलिए जब आप इधर आवेंगे तब आपकी प्रकाशमान ज्योति हमारे हृदयमन्दिरके कोनेमें बैठे हुए छोटे और मलिन विचारोंको ढूंढ सकेगी। और वही ज्योति अपने बलसे उन सबका नाश करेगी। उस वक्त हमारा हृदय पवित्र हो जायगा। फिर आपको उस पवित्र मन्दिरमें बुलानेके लिए आमंत्रण देनेका अधिकारी हो सकूंगा।

हे नाथ ! अब हमारे हृदयके लिए शिक्षाकी जरूरत है। हमारा हृदय निरंतर पवित्र बना रहे और हमारे प्रतिदिनके कार्य भी उसकी पवित्रताके अनुसार होने लगे यही हमारी अभिलाषा है। और यही

आपसे भीख मांगते है। हे प्रभो ! हमने बाह्य क्रियाएं तो बहुत कीं। हमारा सारा जीवन उन्हींमें बीत गया। पर तब भी हमारे हृदयका विकाश नहीं हुआ। हमारी स्थिति वैसीकी वैसी ही बनी रही। हमने धार्मिक क्रियाओंमें और प्रतिदिनके जीवन व्यवहारकी क्रियाओं अथवा कार्योंमें बड़ा भारी भेद डाल दिया है। हम जो प्रतिदिन धार्मिक क्रियाएं करते हैं--मन्दिरमें जाकर दर्शन करते हैं, सामायिक करते हैं, उपवास करते हैं, स्वाध्याय करते हैं और धर्मोपदेश सुनते हैं यह सब इसीलिए कि हमें धर्मात्मा कहलानेका हक प्राप्त हो जाय। हम अपने प्रतिदिनके जीवन व्यवहारमें दूसरोंको तकलीफ देते हैं, उनके गलेपर छुरी चलाते हैं, झूठी गवाही देते हैं, विश्वास-घात करते हैं, और इनके अतिरिक्त जितने बुरे काम हैं वे सब करते हैं। पर फिर भी हम धार्मिक क्रियाएं बराबर पालते रहते हैं। हे नाथ ! हमें अपना इतिहास आपके सामने कहते हुए लज्जा आती है। हम धर्मके उज्वल और पवित्र पड़देके पीछे छिपकर घोर अनर्थ--अत्याचार--करते नहीं हिचकते हैं। हमने अपने पापों-दुष्कर्मों--अत्याचारोंके--छिपानेके लिए खुद ही धर्मको ढाल बना रक्खी है। पर हे विभो ! अब हमारे पापका घड़ा भर गया है, अब बहुत देरतक हमारी स्थिति टिकी रहेगी यह संभव नहीं। हे दयासागर ! आप तो सब जानते हो, इसलिए अब हमारे हृदयके भाव प्रगट किये बिना गति नहीं है। हमारे हृदय पापसे भरे हुए हैं। उन्हें स्फटिककी तरह निर्मल-पवित्र-करनेकी जरूरत है। "**छोटा अथवा बडा काम किया जाय वह सब धर्ममय होना चाहिए।**" यह सिद्धान्त अभीतक हमारे ध्यानमें नहीं आया। हे स्वामी !

उसे हमें सिखाओ—समझाओ। जिन क्रियाओंके करनेमें हमें अपना आत्मत्यांग न करना पड़े उन्हें हम करनेको तैयार ही हैं। पर जिन व्यवहारके कार्योंमें स्वार्थके त्याग करनेका समय आया वहां धर्म धर्मकी जगह रह जाता है। इन धर्म और व्यवहारके द्वारा खड़ी की हुई दीवार बहुत मजबूत है। बहुत समयसे उसका पोषण हो रहा है। रूढ़ियोंने तो उसे और भी अधिक दृढ़ करदी है। इसलिए उसे तोड़े बिना अब छुटकारा नहीं दीख पड़ता। पर उसके तोड़नेके लिए हममें बल नहीं। उसके तोड़नेका रास्तातक भी हमें सूझता नहीं। हे भगवन्! दया करके आप अब मार्ग बतलाओ, जिससे हमारा जीवन धर्ममय बन सके। हम जो जो कार्य करें, फिर वे धार्मिक हों अथवा व्यावहारिक, सब उच्च सिद्धान्त—उच्च विचारके—अनुसार होने लगे। हे अनाथबन्धु! आपने तो हमें मार्गानुसार चलनेके लिए पैंतीस गुण बतलाकर समझाया था कि "तुम अपने जीवन व्यवहारको नीतिमय बनाना" पर हम लोगोंने स्वार्थके वश होकर धर्म और व्यवहारका विभाग भिन्न भिन्न कर दिया है। एक कोठड़ीके दो हिस्से कर दिये हैं। एकमें धार्मिक क्रियाएं और दूसरीमें व्यवहारिक क्रियाएं रक्खी हैं। और धर्म तथा व्यवहारका बिलकुल सम्बन्ध न हो उसी तरहका हम आचरण करते हैं। हमने आपके सिद्धान्तका खून कर डाला है। जहां हमारे स्वार्थकी साधना होती है, वहां हम धर्मके प्रत्येक सिद्धांतपर पांव रखकर खड़े रहनेमें भी नहीं हिचकते। कारण यही कि हमें इन सिद्धान्तोंपर श्रद्धा नहीं है। हम केवल मुहँसे यह बात कहते हैं कि हम इन तत्त्वोंको मानते हैं। पर हमारे वर्तावकी ओर दृष्टि कीजिये, तब आप जान सकेंगे

कि हम केवल बोलनेवाले नाटकके पात्र हैं। धर्मात्मा कहलाना चाहते हैं। पर धार्मिक सिद्धान्तोंका हमारे हृदयपर कुछ भी असर नहीं पड़ा है।

हे गुरो! हम बड़े अभिमानके साथ संसारके सम्मुख यह बात कहते हैं कि हमारा धर्म परम पवित्र है। हमारे सरीखा अहिंसाका सिद्धान्त दूसरे किसी धर्ममें नहीं है। हमारे धर्मके सिद्धान्त इतने ऊंचे और रहस्य पूर्ण हैं कि दूसरोंकी तो चोंच भी उनमें नहीं डूब सकती। इस तरह लोगोंको समझाकर हम फूल जाते हैं। पर उन सिद्धान्तोंका हमारे जीवन व्यवहारपर जबतक असर न हो तबतक उनकी उच्चता बतलानेका हमें अधिकार ही क्या है? सिद्धान्त और वर्तावमें बड़ा भारी भेद पड़ गया है। निश्चय और व्यवहारमें जमीन आसमानका अन्तर जान पड़ने लगा है। हमारे धार्मिक सिद्धान्त कितने ही अच्छे और उत्तम चारित्रके बतानेवाले हों, पर जबतक हम उनके अनुसार नहीं चलेंगे तबतक उन सिद्धान्तोंके माननेका हम झूठा दावा करते हैं—हम केवल ढोंगी हैं।

हम पुनर्जन्म, कर्म, और आत्माके अमरत्वका सिद्धान्त माननेवाले हैं। पर दूसरेको तकलीफ पहुंचाते समय कर्मका नियम हमारे पाससे न जाने कहां चला जाता है। दूसरेको कष्ट देते समय पुनर्जन्मका सिद्धान्त मगजमें छिप जाता है। आत्मा अमर है यह हम कहते हैं पर शरीरके मर जानेपर कहीं आत्मा न मर गया हो ऐसा समझकर रोने लगते हैं। हमने अपने जीवन व्यवहारकी सामान्य नीतिको भी एक कोठड़ीमें रख छोड़ी है।

हे प्रभो! आपके सिद्धान्तमें लिखा है कि–

'मनमें निश्चय दृष्टि रख पाले जो व्यवहार।
वह होता अति शीघ्र ही भव समुद्रके पार॥'

पर इन शब्दोंका असर हमपर बिलकुल नहीं हुआ। हम धार्मिक और व्यवहारिक क्रियाओंको भिन्न भिन्न समझते हैं। "**व्यवहार धर्ममय होना चाहिए।**" इस सिद्धान्तके समझानेकी अब बड़ी जरूरत है।

हे प्रभो! यह अंधाधुंधी बहुत दिनोंसे चल रही है, पर अब तो इसका नाश करके **धर्ममय व्यवहारके राज्यकी** स्थापना करनेकी आवश्यक्ता आ पड़ी है। हमारा प्रत्येक काम धार्मिक सिद्धान्तके अनुसार होना चाहिए। इसलिए यह सिद्धान्त जिस तरह हमारे हृदयपर असर कर सके उसी तरह समझानेकी जरूरत है। मनुष्य चाहे थोड़ा पढ़ा हुआ हो, चाहे वह व्युत्पत्तिवाद और न्यायशास्त्र न समझता हो, पर यदि उसका हृदय गुणग्राही निरभिमानी, दयार्द्र और सरल है तो वह आपके उच्च सिद्धान्तके अनुसार चलनेका पात्र है। हमें अब तोतेकी तरह रटे हुए बहुत ज्ञानकी आवश्यक्ता नहीं है, पर हृदयकी जरूरत है। एक मोची बालकके जूतेके लिए चमड़ा काट रहा था। वह चमड़ा उसे कड़ा जान पड़ा। उसने उस चमड़ेको छोड़कर दूसरा चमड़ा पसन्द किया। विचार करनेसे–उसके भावोंकी कोमलता देखनेसे– कि कड़े चमड़ेसे बच्चेको तकलीफ होगी, कहना पड़ेगा वह वास्तवमें दयालु है। उसने दयाका तत्व समझा है। सर फिलिपसिड्नी नामका एक ग्रन्थ लेखक एक लड़ाईमें गया था। वह वहां घायल होगया।

उसवक्त उसे प्यास इतने जोरसे लगी कि वह तड़फने लगा। इतनेमें एक सिपाई पानी ले आया। सिड्नीके पास ही एक और घायल सिपाई पड़ा हुआ था। उसने उस जल लानेवालेसे जल मांगा। सिड्नी यद्यपि मृत्युकी गोदमें पड़ा हुआ था तब भी उसने जल स्वयं न पीकर अपने पास पड़े हुए घायल सिपाईको जल दिल-वा दिया। यही आदर्श रूप परमार्थवृत्ति है। इसीका नाम धर्म-मय व्यवहार है। हमारे प्रत्येक कार्यमें, प्रत्येक वचनमें, प्रत्येक लेखमें और प्रतिदिन दूसरेके साथ होनेवाले सम्बन्धमें हमारा वर्ताव धर्ममय हो, तभी हे प्रभो! हम आपके धर्मके माननेवाले गिने जा सकते हैं। नहीं तो हम केवल धर्मका खोटा ढोंग करनेवाले हैं। हमारे खाली वाह वाह लूटनेके ढोंगको छुड़ाइए। हमारा व्यवहार परमार्थमय कीजिए। तभी हम वास्तवमें आपके अनुसार चल सकेंगे।

हे नाथ! हमने जिन क्रियाओंको सीखी थीं उनका उद्देश्य भी हमारे हृदयको उच्च और उन्नत बनानेका था। सब निमित्त कारण मिलनेसे चित्त पवित्र होता है और इसी खयालसे ही सब क्रियाओंके करनेका उपदेश था, पर इस उद्देश्यको समझानेवाला कोई नहीं रहा। हम स्थूलपने इन क्रियाओंके खाली-निस्सार-खोखोंके पीछे पड़ गये हैं। इसलिए उसका उद्देश्य समझे विना हमारे हृदयकी शुद्धता न हुई। चित्त शुद्धि और क्रिया इन दोनोंका क्या सम्बन्ध है? यह हमारी क-ल्पनाहीमें नहीं आया। क्रिया करानेवाले गुरुओंने भी हमें इस विषयमें कुछ नहीं समझाया। इसलिए हम तो बोलो राम बोलो राम जैसा तोता रटा करता है उसी तरह क्रियाएं करने लगे। पर हमारी स्थिति तो—

काठ काट माला करी बीच पिरोया सूत।
माल विचारी क्या करे फेरन हार कपूत॥

इस तरहकी होगई है। क्रियाएं करते करते बहुत वर्ष बीत गये। हमारी जिन्दगी पूर्ण होनेपर आई, पर तब भी हम हृदयशुद्धिमें आगे नहीं बढ़ सके। हमारा हृदय तो जैसे पहले था वैसा ही मलिन अब भी हो रहा है।

हे कृपासिन्धु! हम अपनी बीती राम कहानी आपसे कहांतक कहें? आपको बारंबार कहकर तकलीफ पहुंचाना मुझे पसन्द नहीं। पर क्या करूं। आपके सिवा मुझे कोई ऐसा दीखता भी तो नहीं जिसे जाकर अपनी दुःख कहानी सुना सकूं? इसलिए आपसे ही निवेदन करना पड़ता है। यदि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार न करें तो फिर हमें किसका आधार मिल सकता है? हमारा आधार कहिए, हमारा जीवन कहिए अथवा हमारे निष्कारण बन्धु कहिए—जो कुछ भी कहिए—वह सब आप ही हैं। हम आपके शरण आये हुए हैं। इसलिए हे प्रभो! अब उच्च सिद्धान्त हमें सिखाइए, हमारा जीवन धर्ममय हो उसी तरहका ज्ञान दान दीजिए और हमारे हृदयको पवित्र बनाइए जिससे हम आपका सत्कार करनेके पात्र हो सकें और आपके द्वारा चलाये हुए पारमार्थिक कार्योंमें हम अपने जीवनका तुच्छ भाग अर्पण कर सकें।

हम समयको नहीं पहचानते हैं।

हमारा अधःपतन क्यों हुआ? क्यों हमारी जाति अज्ञानके अपार समुद्रमें गिरी? क्यों हम आज छोटीसे छोटी बातके लिए

भी दूसरोंका मुहँ ताकने लगे ! क्यों हमारी जातिके भाई अन्नके एक एक दानेके लिए दूसरेंकी ठोकरोंको—तिरस्कारको—सहने लगे और क्यों हम लाखों करोड़ों रुपया खर्च करनेपर भी जातिका वा देशका भला—उपकार—नहीं कर सके ? इत्यादि जितने इस सम्बन्धके प्रश्न हृदयमें उठते हैं उन सबका उत्तर इसी एक उत्तरसे हो सकता है कि " हम समयको नहीं पहचानते हैं । " और इसीसे हम दिनपर दिन भयंकरसे भयंकर तकलीफके मुहँमें फँसते चले जा रहे हैं । हमे उनसे उद्धार पानेका कोई मार्ग अभीतक नहीं सूझ पड़ा है । कब सूझेगा यह भी अभी भविष्यत्के विशाल उदरमें है । कौन जानना था कि हमारी कभी ऐसी दशा होगी जिससे उद्धार पानातक हमें कठिन हो जायगा ? अस्तु ।

इसे सब स्वीकार करेंगे कि उतना पांव पसारिये जितनी **लंबी सोड़** । अर्थात्—हमें उतना हीं पांव फैलाना चाहिए जितनी लंबी हमारी सोड़ हो । इससे उल्टा चलनेवालेको सिवा दुःखके और कुछ सुख नहीं होता । आज हमें ऐसे हजारों उदाहरण मिल सकते हैं जो अपनी अवस्थापर ध्यान न देकर काम करनेवालोंको बड़ी बड़ी आपत्तियां उठानी पड़ी हैं । इस सबका सार दूसरे शब्दोंमे यों कह लीजिए कि मनुष्यको भविष्यत्का विचार करके ही सब काम करना चाहिए । अर्थात्–समयज्ञ होना चाहिये । जब एक व्यक्तिके लिए भी समयज्ञ होने की आवश्यकता है तब यह सहज सिद्ध है कि समुदायको—जातिको—तो समयज्ञ होना ही चाहिए । हमारी जातिमें समयज्ञता नहीं है । इसलिए उसकी हालत भी आज बहुत खराब है । हमारे प्राचीन पुरुषोंमें

समयज्ञता थी। वे जैसा वक्त देखते थे वैसा ही काम करते थे। इसी लिए उनके वक्तमें जातिकी आशातीत उन्नति थी। पर उनके पीछे हमने उनके गुणोंका—उनकी दूरदर्शिताका—आदर नहीं किया। इसलिए हम स्वयं भी गिरे और साथ साथ सारी जातिको भी ले बैठे। जब अकलङ्कस्वामीने देखा कि यदि मैं अपनेको जैनी बता-कर बौद्ध गुरुके पास पढ़ने जाता हूं तो वह मुझे न पढ़ायगा और विना बौद्धसिद्धान्तके जाने इन्हें पराजित कर न मैं जैन धर्मका प्रचार ही कर सकूंगा। इस समयज्ञतासे उन्हें अपना धर्म छिपा-कर बौद्ध बनना पड़ा था। तब ही वे अपने कार्यकी सिद्धि कर सके थे। हममें समयज्ञताके न होनेसे हम जो कुछ काम करते हैं, वह चाहे फिर धार्मिक ही क्यों न हो, उससे हम बिल्कुल लाभ नहीं उठाते हैं। किन्तु जातिको या अपनेको एक और संकटमें डाल देते हैं। करते हैं धर्म बुद्धिसे पर हो जाती है बुराई।

समयज्ञताकी उपयोगिताको आज जो जो जातियां समझ चुकी हैं वे अपनी उन्नति भी खूब कर रही हैं। जिन जातियोंकी बहुत थोड़े दिनोंसे सृष्टि हुई है वे भी आज उन जातियोंसे, जो अपनेको प्राचीन बतलाती हैं, बहुत कुछ उन्नति पथमें आगे बढ़ गई हैं।

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस समय जितना अज्ञानका राज्याधिकार हमारी जातिपर बढ़ा हुआ है उतना और किसी जातिपर न होगा। तेरालाख जैनियोंकी संख्यामें ऐसे मनुष्योंकी संख्या, जो कुछ पढ़ना लिखना जानते हैं, बहुत थोड़ी है। उनके लिए ज्ञानके प्रचारकी कितनी जरूरत है यह बात सहज ही ध्यानमें आसकती है। पर पूछा जाय कि इसपर हमारी जातिके लोगोंका

भी कुछ ध्यान है या नहीं ? तो साफ कहना होगा कि जो लोग कुछ पढ़े लिखे हैं, जिन्हें अपनी जातिकी बुरी हालत देखकर दुःख होता है उन्हें तो जरूर यह चिन्ता प्रतिसमय बाधित किया करती है कि हम अपनी जातिमें ज्ञानका प्रचार कर उसका सुधार करें। अपने भाई जो ज्ञानके बिना नाना तरहकी आपत्तिया सहते हैं उनसे उनकी रक्षा करें। इनके सिवा एक बड़ा भारी दल उन लोगोंका है जो पढ़े लिखे तो वे कुछ नहीं है पर जातिकी वागडोर—भविष्यत्—उनके ही हाथमें है। वे जातिको नीचीसे नीची गिरा तो सकते हैं पर उसे उंची उठानेकी कुछ परवा नहीं करते हैं। प्रश्न हो सकता है कि जब जातिकी वागडोर ही उनके हाथमें है तब क्योंकर वे उसे उंची नहीं उठा सकते ? इसका उत्तर पहले ही लिखा जा चुका है कि वे समयका आदर नहीं करते। अर्थात्—उनमें समयज्ञता नहीं है। इसलिये उनके द्वारा उन्नति न होकर अवनति होती है। वे धनवान हैं, इसलिए जातिके छोटे बड़े सभी उनका सत्कार करते हैं। सभा पञ्चायतीमें उन्हें सबसे उंचा आसन मिलता है। सब लोक एक स्वरसे उनकी योग्यताकी तारीफ करते हैं जातिके जितने छोठे बड़े मामले होते हैं वे सब बिना उनके तय नहीं होते। वे जो कुछ कह देते हैं वह सबको चुपचाप स्वीकार करना पड़ता है और उसीके अनुसार फिर व्यवस्था भी की जाती है। इसपर कुछ विचार नहीं किया जाता कि वह व्यवस्था उचित है या अनुचित ? न्याय किया गया है या अन्याय ? इसका विचार करे कौन ? यदि पढ़े लिखे इसपर कुछ आलोचना करते हैं तो उनकी कुछ सुनाई नहीं होती और जो साधारण स्थितिके लोग हैं

उन बेचारोंकी इतनी हिम्मत नहीं जो वे उनका सामना कर सकें। कारण—आज जातिके दुर्भाग्यसे बहुतसे लोगोंकी हालत अच्छी नहीं है। उन्हें छोटीसे छोटी बातके लिए श्रीमानोंका मुख ताकना पड़ता है। ऐसी दशामें यह कब संभव हो सकता है कि वे उनसे विरोध करके अपने मार्गमें कांटे खड़े करें? ऐसे समयमें यही विचार कर सन्तोष करना पड़ता है कि **स्वकार्यं साधयेद्धीमान्** अर्थात्—विचारवानोंको किसी तरह अपने चलते हुए मार्गको कंटकित न होने देकर सुरक्षित रखना चाहिए। एक और बात है—हमारी धनिक मण्डलीका मिजाज वैसे ही गरम रहता है जो अपनी हजारों खुशामद करनेपर भी दूसरे बेचारे जातिभाईपर उनकी सुदृष्टि नहीं होती। फिर किसी कारणसे श्रीमानोंसे वे यदि विरोध करलें तब तो उन बेचारोंकी शामत ही आजाय। वे एक एक कणके लिए भले ही कालके ग्रास बन जायँ पर उन्हें कोई नहीं पूछनेका कि तुम किस हालतमें हो? तो अब पाठक विचारें कि उनका ऐसी संकटकी हालतमें किसी तरह अपने कामको चलानेके सिवा और क्या काम हो सकता है? इसीलिए हमने अपर कहा है कि जातिकी वाग्डोर उन लोगोंके हाथमें है और उन्हींकी सर्व जगह चलती है। नीतिकारका यह कथन कि **सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति** बहुत मार्केका है।

हमारी जातिके धनवानोंमें एक बात और है। वह यह कि वे पैसा खूब खर्च करते हैं, पर किस जगह पैसा खर्च करनेकी जरूरत है और कैसे जाति और देशके भाई उसके द्वारा लाभ उठा सकेंगे? इसका वे कुछ विचार नहीं करते हैं। आज कल जैनियोंका पैसा—या तो प्रतिष्ठा करानेमें खर्च होता है, या मुकद्दमे

बाजीमें, या विवाह शादियोंमें रंडियोंका नाच करानेमें, या जातिके अनाथ, अपाहिज, दुःखी, भाइयोंकी कुछ परवा न करके नुकते आदिमें। इत्यादि बहुतसे ऐसे कार्य हैं जिनके द्वारा जातिकी बर्बादी और दिनपर दिन उसमें दारिद्रताके वासके सिवा कुछ लाभ नही होता है। इसमें भी एक और विचारणीय बात है। जिनके पास पैसा है वे लोग यदि बिना विचारके साथ अनापसनाप भी खर्च करें तो उन्हें कुछ तकलीफ—दुःख—नही होता। क्योंकि एक तालाबमेसे आप घड़ाभर पानी भर लीजिए। उसकी वह कमी ऐसी है कि उससे उसे कुछ क्षति नहीं पहुँचेगी। पर जिनके पास पूरा अपने निर्वाहका भी ठिकाना नहीं है, जिन्हें प्रतिदिन ही कुआ खोदकर पानी निकालना पड़ता है और वही उनके निर्वाहके लिए होता है। यदि वे एक ही दिन अपने हाथ पांवसे कुछ श्रम न करें तो उसी दिन उनके मुहँके ऊपर मक्खियां भिन भिनाने लगती हैं। उस समय तो कोई उनके पास जाकर उनसे उनकी हालत नहीं पूछता है कि वे मरते हैं या जीते हैं? भूखे हैं या उन्होंने कुछ खाया है? वे दुखी हैं या सुखी? पर हां जब कहीं मुकद्दमा लड़नेका समय आता हैं, तब चारों ओरसे हाथ उठा—उठाकर उन्हें धर्मकी दुहाई दी जाती है कि प्यारे गरीब भाइयो! अब तुम्हारी परीक्षाका समय आया है, अब तुम्हें अपनी गाढ़ी कमाईका रुपया इसवक्त खर्च करना चाहिए। यदि इस समय तुम कुछ सहायता न दोगे तो हमको हमारे कदीमी हकसे सदाके लिए हाथ धो बैठना पड़ेगा। देखो, अमुक स्थानके लिए मुकद्दमा लड़ना है, उसके लिए लाखोंकी, नहीं करोड़ों-

की जरूरत पड़ेगी। इसलिए जी जानसे तुम्हें सहायता देनी चाहिए।
इस धर्मकी दुहाईका उन बेचारोंके चितपर कितना प्रभाव पड़ता
है उसका अनुसंधान करना जरा कठिन है। वे उस दुहाईके डरसे
कि कहीं हम इस काममें सहायता न करनेसे नर्क न चले जायँ,
जो अपने पास होता है उसे दे डालते हैं। उस समय उन्हें इस
बातका विचार नहीं रहता कि कल हमारी क्या हालत होगी? कहांसे
हम अपने बिलबिलाते बाल बच्चोंका पेट भरेंगे? वे अपनी गरीबी
हालतमें भी धर्मके नामसे इतने उदार बन जाते हैं। पर क्या
कोई फिर उनकी कभी खबर लेता है कि आज तुमने अपना पेट
कैसे भरा? कभी नहीं। उन बेचारोंपर हमारे धनिकोंका कैसा भया-
नक अत्याचार होता है जिसे देखकर दांतोंमें अंगुली दबानी
पड़ती है। आप तो समयको न देखकर अपने पैसेका दुरुपयोग
करते ही हैं पर साथ साथ बेचारे गरीबोंकी दुःख दशाको
और भी दुरूह बना देते हैं। जब जातिके लोगोंमें इस प्रकारकी
असमयज्ञता है, जिससे कि वे जातिकी जरूरतोंपर ध्यान न देकर
अनावश्यक कामोंमें खुले हाथ पैसा बहाते हैं तब यह आशा कैसे हो
सकती है कि जातिकी उन्नति होगी? हम तो यहांतक अन्धकारमें
पड़े पड़े सड़ रहे हैं कि हमारे अड़ोसी पड़ोसी सब उठ कर अपने
अपने काम धन्धोंमें लग गये पर तब भी हम उससे निकलना नहीं
चाहते। दूसरे दिनोंदिन आगे आगे बढ़ते चले जाते हैं, पर हमें
इच्छासे नहीं तो ईर्षासे भी यह नहीं सूझता कि हम उनसे आगे
बढ़नेकी कोशिश करें। उसमें भी हमारी बड़ी भारी मूर्खता यह
है कि हमारे पास सब तरहके साधनोंको मौजूद रहते हुए भी हम

अपनी ही धुनमें मस्त हैं। हम अपने इन विचारोंकी कहांतक तारीफ करें। दैव करे ऐसा सुयोग भारतकी किसी जातिको न मिले। इस असमयज्ञतासे हम कितनी हानि उठा रहे हैं, इसका कुछ ठिकाना नहीं। पढ़े लिखे हमें इस तरह अनावश्यक कार्योंको करते हुए देखकर कितना उपहासका पात्र बनाते होंगे, क्या इसपर किसीने कभी विचार किया है? सचमुच हमारे लिए यह बड़ी भारी लज्जाकी जगह है कि हम फिजूल कार्योंमें पैसेका दुरुपयोग करते वक्त तो कुछ भी संकुचित नहीं होते और जहां कोई सामाजिक सुधारका काम आता है तब उसे अथवा अपने देशके या जातिके भाइयोंकी सहायताके लिए देनेमें हमें अपार दुःख होता है। हां यह हम खूब अच्छी तरह जानते हैं कि वे चाहे अपने पैसेको धूलमें मिलादें पर उनपर किसीकी सत्ता या जबरदस्ती नहीं चल सकती है। यह ठीक है कि उनके विचारोंपर किसीका अधिकार नही है। पर हमें तो यहांपर इतनी ही बात बतलानी थी कि हममें असमयज्ञता कितनी है। हमारी जातिका पैसा किसी काममें खर्च नहीं होता है सो भी बात नहीं है, पर हां वह जितना होता है अविचारसे और समयकी प्रगतिको न देखकर। इसलिए हमें उन उपायोंके करनेकी जरूरत है जिनसे जातिके पैसेका फिजूल कामोंमें दुरुपयोग न होकर उससे जातिकी जरूरतें पुरी होने लगे। हमें यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिए कि जिसने समयकी कदर की है समय भी उसीकी कदर करेगा। इसलिए हमें समयज्ञ होना जरूरी है।

———

विषविवाह ।

(सामाजिक उपन्यास)

(२)

क्रोध मनुष्यकी बुद्धिको नष्ट कर देता है । जब क्रोधका पिशाच उसपर सवार होता है तब उसे कुछ विचार नहीं रहता है । वह भयंकरसे भयंकर काम करनेके लिए उतारु हो जाता है । क्रोधके सामने वह स्त्रीहत्या, नरहत्या बालहत्या आदि महापापकी कुछ परवा नहीं करता है । क्रोधसे ममता, शान्ति, सुमति आदि सभी पवित्र गुण नष्ट हो जाते हैं ।

किसनचन्दने भी इसी क्रोधके वश हो भय विह्वला बालिका रंभाको परित्याग कर विषविवाहका बीज बोया है । उसने बेचारी रंभाकी मोहनी मूर्तिको हृदयसे भुला देनेके लिए चुन्नीलालकी कन्याके साथ विवाह करनेका संकल्प किया है ।

चुन्नीलालकी एक मात्र सन्तान केसर है । उसकी उमर १२ वर्षके लगभग होगी । वह अभीतक अविवाहिता है । उसके अविवाहित रहनेका कारण है । उसके पिताको मरे आज तीन वर्ष होगये हैं । केवल अब उसकी मा जीती है । वह उसका विवाह ऐसेके साथ करना चाहती है जिसके द्वारा उसे खूब धन मिल सके । हां एक बात और है । वह यह कि बहुतोंको उसकी माके चरितमें सन्देह है । इसलिए अच्छे घरानेके तो उसकी लड़कीका सम्बन्ध पसन्द नहीं करते और जो करते हैं उनके पास इतना पैसा नहीं जो वे उसकी आशाएं पूरीकर सकें । इसीलिए केसरकी उमर इतनी बड़ी होगई

और वह अभीतक अविवाहिता वनी है । किसनचन्दने उसकी माको वहुत कुछ लोभ देकर अपने साथ उसका विवाह करनेके लिए राजी की है । केसरकी माने अपनी लड़कीका किसीतरह ठिकाना लग जाने और अपनी आशाके पूरी हो जानेके अभिप्रायसे वूढ़े किसनचन्दके साथ उसका विवाह करना स्वीकार किया है। उसे इस सम्वन्धसे वड़ी खुशी हुई।

इधर एक महीना, दो महीना, तीन महीना वीत गये । रंभाको उसकी ससुराल ले जानेके लिए कुछ खवर न आई । यह देखकर नेमिचन्द और उसकी स्त्रीके दिलमें नाना तहरका सन्देह उत्पन्न होने लगा । क्योंकि कहां तो दश दश दिनके वाद ही रंभाको लिवा लेजानेकी सुसरालसे खवर आ जाती थी और अव तो महीनेपर महीने वीत गये तव भी कुछ समाचार नहीं ? इसका कारण कुछ तो जरूर ही होना चाहिए । यही चिन्ता उनके दिलको चिन्तित वनाये रखती थी । उन्हें इस प्रकार चिन्तित देखकर एक दिन रंभाने अपनी मासे सव वातें कहदीं । उसकी माने यह सव हाल नेमिचन्दसे कहा। सुनकर नेमिचन्दने एक दीर्घ निश्वास लिया और कहा कि यह जो घटना वीती है इसे तो मैं पहलेहीसे समझता था। वूढ़ेके साथ नौ वर्षकी लड़कीका विवाह करना यह हमारी ही धृष्टता है। ऐसे अनमेल विवाहवृक्षपर कैसे फल फलते हैं वह सव इसी स्थानपर ही दिखाई पड़ता है।

रंभाकी माने नेमिचन्दसे कहा—लड़की तो जान वूझकर ही ऐसेके साथ विवाही गई है। इसलिए अव क्या हो सकता है? हां एक काम करो । लड़कीके हाथ पांव पकड़कर उसे सुसराल रख आओ।

मैं तुमारे पांवोंमें पड़ती हूं। मेरी बात मानो, जमाईके पास मानापमान गिनना ठीक नहीं ।

ये सब बातें तो होही रहीं थीं कि इसी समय रंभा एक पत्र हाथमें लेकर उनके पास आई । उसे देखकर नेमिचन्द और उसकी स्त्री उसके सम्बन्धकी बातोंको छोड़कर घर सम्बन्धी बातें करने लग गये। नेमिचन्द रंभाके हाथ में पत्र देखकर बोला--रंभा! पत्र किसका है? रंभाने कुछ भी उत्तर न देकर धीरे धीरे हाथ फैलाकर पत्र अपनी माके हाथमें सौंप दिया । उसकी माने उसे पढ़कर नेमिचंदको दिया । पत्रपर सिरनामा रंभाके नामका देखकर नेमिचन्दने उसे रंभाके पास ही फेंक दिया। रंभाकी माने पत्र उठाकर कहा कि इसे पड़ो तो? जमाईजीने क्या लिखा है? उत्तरमें नेमिचन्दने यह कह कर कि पुत्रीकी चिट्ठी मुझे पढ़ना पसन्द नहीं, तुम ही पढ़ो। रंभाकी माकी आंखोंमें आंसू भर आये । वह बोली कि देखो जमाईजीने हमें उलहना देकर रंभाको लिखा है। नेमिचन्दने कहा क्या लिखा है? रंभाकी मा बोली--"वे अब रंभाको अपने यहां नहीं ले जावेंगे, किन्तु शीघ्र ही दूसरा विवाह करेंगे और रंभाके निर्वाहके लिए चार रुपया महीनेके महीने भेज दिया करेंगे।"

नेमिचन्द यह सुनकर वज्राहतकी तरह क्षणभरके लिए स्तंभित होगया। उसके मुहंकी कान्ति आरक्त हो उठी और शरीर रोमाञ्चित होगया। कुछ देर बाद उसने कहा कि--वे विवाह किसके साथ करेंगे?

रंभाकी माने कहा कि चुन्नीलालकी लड़कीके साथ। उसका नाम केसर है।

नेमिचन्दने रंभासे कहा कि रंभा ! तू केसरको पहचानती है क्या ? तूने कभी उसे देखी है ?

सूर्यकी किरणोंसे विकसित कमलिनी जैसे वायुके प्रबल वेगसे झुक जाती है उसी तरह अपना मुख नीचा करके रंभाने अपनी मासे कहा उसे मैं पहचानती हूं। वह मेरे घरके पास ही रहती है। वह कभी कभी मेरी चोटी गूंथ जाती थी और मुझे सिखा भी जाती थी।

यह सुनकर उसकी मा क्रोधित होकर नेमिचन्दसे बोली कि " तुमने ही सब नाशकी जड बूढेको जमाई बनाया है । इसकी अपेक्षा तो यह अच्छा था कि लडकीके हाथ पांव बांधकर उसे गंगाके जलमें फेंक देते। ऐसा करनेमे आज चिन्ताके मारे तो नहीं जलना पडता !

नेमिचन्दने कहा—जो हुआ सो हुआ। अब कहो क्या करें ? यह सब कर्मका दोष है। इस समय यह विवाह न हो, ऐसी चेष्टा—प्रयत्न—करना चाहिए। वृद्ध किसनचन्दको एक वक्त अच्छी तरह समझना चाहिए कि लडकीके निर्वाहके लिए तुम चार रुपया महीना दे दिया करना, क्या इसलिए उसका विवाह तुम्हारे साथ किया है ?

मूर्ख किसनचन्द ! जान पडता है तुम्हें धनका बहुत अभिमान है। पर याद रखना यह सब अभिमान क्षणभरमें नष्ट हो जायगा। दूसरोंकी लडकियां इसलिए नहीं हैं कि वे बेचारी जीवन पर्यन्त दुःख भोगें और तुम अपना जीवन सुखसे विताओ ? यह कह कर ही नेमिचन्द घरके बाहर हुआ और जल्दी

जल्दी कन्हैया डाकूके पास पहुंचा । कन्हैया देवपुरका एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति था । वह यद्यपि था तो डाकू पर तब भी अनाथ, आश्रयहीन लोगोंपर कभी किसी तरहका अत्याचार नहीं करता था । किन्तु उल्टा उन्हें अपना लूटा हुआ धन बड़ी उदारताके साथ देता था । यह कह देना अनुचित न होगा कि कन्हैयाके साथ नेमिचन्दकी बहुत गाढ़ी मित्रता थी । इसीलिए नेमिचन्द उसके पास गया और उससे बोला कि—कन्हैया ! आज तुम्हें हमारे अनुरोधसे हमारी रक्षा करनी होगी । तुम्हारे पास बहुतसे लाठी वाले हैं उन्हें आजके लिए हमें सौंपो । इस समय तुम ही हमारे एक मात्र सहायक हो ।

कन्हैयाने हँसकर नेमिचन्दसे कहा कि भाई ! लाठीवालोंको लेजाकर तुम क्या करोगे ? बताओ तो बात क्या है ?

नेमिचन्दने कहा—कन्हैया ! तुम्हारी बात मैंने न मानी और रंभाका व्याह बूढ़े किसनचन्दके साथ कर दिया। बेचारी अबोध बालिकापर सरासर अन्याय किया । उसके गलेपर छुरी फेरकर जिन्दगी भरके लिए उसे दुखी करदी । इतने पर भी किसनचन्दने अब उसे अपने घरसे निकालदी और लिखा है कि अब मैं रंभाका मुँह देखना नहीं चाहता । मैं दूसरा व्याह करूंगा ।

कन्हैयानें हँसकर कहा—भाई ! बड़े लोगोंका ऐश्वर्य—सम्पत्ति-देखकर तुम तो अपनेको एक ही साथ बिल्कुल भूल गये। तब तो मेरी बात तुम्हें जहरकी तरह मालूम देती थी । भाई ! यह खूब समझ रक्खो कि धनवान लोगोंके चारित बहुधा करके किसी न किसी कलङ्कसे कलङ्कित रहते ही हैं । पर बात यह है कि धनके बलसे

उनके चरित छिपे रहते हैं। अस्तु। जो कुछ हो—लठीवालोंकी क्या जरूरत है ?

नेमिचन्दने कहा—किसनचन्दकी सब सम्पत्ति लूट कर उसे अपने कियेका फल चखादें।

कन्हैयाने कहा—इससे रंभाका क्या उपकार होगा ?

नेमिचन्द—किसनचन्दकी सब सम्पत्ति जब लुट जायगी और वह दरिद्र हो जायगा तब उसका विवाह करनेका विचार रद्द हो जायगा। क्योंकि धनके अभिमानमें आकर ही उसने यह बुरा मनसूबा बांधा है।

कन्हैया—रंभाके साथ उसके मनका न मिलना ही इस बुरे अभिप्रायका करण जान पड़ता है। इसलिए उन दोनोंके मनका मिलाप होजाय वही उपाय करना अच्छा है। रंभाको उसके घरपर रख आओ। इससे यदि तुमारी इच्छा पूर्ण न हो तो फिर मैं हूंही। किसनचन्द अपना कियेका फल भोगेगा। तुम निश्चिन्त होकर एक दफ्त रंभाको उसके यहां भेजदो।

नेमिचन्दने वैसा ही करना स्वीकार किया।

इधर रंभाने अपने उद्धारका कोई उपाय न देखकर केसरको एक पत्र लिखा। उसका तात्पर्य यह है—

प्रियभगिनी केसर !

सुनती हूं तुम्हारा विवाह होनेवाला है। यह खुशीकी बात है। पर यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि तुम मेरे............के साथ विवाह करोगी। मैं तुम्हें विवाह करनेसे नहीं रोकती। पर हां उनके साथ मत करना। वे मेरे हैं। मैंने उनके लिए अपना शरीर

प्राण, जीवन, यौवन, आदि सभी कुछ अर्पण कर दिया है। मैं
उनकी विवाही स्त्री हूं। यद्यपि वे मुझे बहुत दिनोंसे घरपर नहीं
लिवा लेगये हैं, पर मैं बहुत जल्दी उनके पास जाऊंगी।
तुम्हें याद होगा कि तुमने मुझे एक दिन कहा था कि
बूढ़ेके साथ विवाह करनेकी अपेक्षा तो जीवन पर्यन्त
कुवांरी ही रहना अच्छा है। तुम उनका स्वभाव अच्छी तरह
जानती हो। तुम्हींने एक वक्त उनकी निन्दा भी की थी। पर इस वक्त
तुम्हारा मन उनपर कैसे मुग्ध होगया यह नहीं कह सकती।
तुमसे प्रार्थना करके कहती हूं कि मेरा सर्वनाश मत करना। क्योंकि
पृथिवीमें यदि स्त्रीका कोई उपास्य है तो वह उसका स्वामी है, पृथि-
वीमें यदि स्त्रीका कोई पूज्य है तो वह उसका पति है और पृथिवीमें
यदि स्त्रीके लिए कुछ आनन्द उपभोग करनेके लिए है तो वह उसके
जीवनेश्वरका सम्मिलन है। इसलिए तुम मुझे इस स्वामीसुखसे वञ्चित
न करोगी। ऐसी पूर्ण आशा है।

बहन! परलोकका कुछ विचार करना। यदि परलोकमें तुम्हें
श्रद्धा न हो तो सुनील आकाशमें सूर्य और चन्द्रमाका उदय, प्रवा-
हिनी गंगाके चञ्चल लहरोंकी लीला और जीवकी अवश्यम्भावी
मृत्यु देखकर अपनी बुरी वासनाको पास मत फटकने देना। अधिक
क्या लिखूं। आखिर यही प्रार्थना है—देखना कहीं मुझे
अपने प्राणेश्वरके सुखसे दूर रख कर जीवन भरके लिए अनाथिनी
मत बना देना। केसर! केसर!! मेरी रक्षा तुम्हारे ही हाथमें है। मुझ-
पर दया करना।

तुम्हारी छोटी बहन—
रंभा.

नईआई पुरानीको दूर करेंगे।

यह एक लोकोक्ति है, जिसका ग्रामीण लोग अपने गीतोंमें बहुधा प्रयोग किया करते हैं। यह एक प्रकृतिका नियम है कि संसारमें जितने पदार्थ हैं वे सब परिवर्तनशील हैं; क्षण क्षणमें बदलते रहते हैं और समय समय पर उनका रूपान्तर होता रहता है। इस परिवर्तनमें नई चीज पुरानीका स्थान लेती रहती है। जिस वस्तुका आज प्रचार है, जो आज प्रिय और उपयोगी है, यदि कलको कोई उससे उत्तम बन जाय, तो आजवालीको कोई न पूछेगा और नवीनकी ही सर्वत्र प्रशंसा होने लगेगी। वही उपयोगी और लाभदायक हो जायगी। यदि दैवयोगसे परसों उससे भी उत्तम बनजाय तो कलवालीको न पूछकर परसोंवालीको ही हर कोई पूछेगा। जिस समय डाकका प्रबन्ध न था, लोग हल्कारोंसे ही काम चलाते थे, जिन्हें कि किसी किसी जगह जानेमें महीनों लग जाते थे। पर जब अंग्रेजोंने डाकखानेका प्रबन्ध किया तब हल्कारोंका भी रिवाज बिल्कुल जाता रहा और जबसे तार जारी हुए तबसे सैकड़ों हजारों खबरें तारसे ही आने जाने लगीं और डाकखानेका काम भी सुस्त मालूम होने लगा। इसी तरह रेल चलनेसे पहले सब कोई बैलगाड़ियोंमें ही सफर किया करते थे, परंतु जबसे रेल हुई, तबसे पांच कोसका सफर भी गाड़ियोंसे भारी मालूम होने लगा। जब सीनेकी मशीन न थी तब हाथोंसे हरएक तरहका सीनेका काम होता था, पर जबसे मशीनें चलीं तबसे जूते तक भी मशीनसे सिलने लगे।

अर्थात्—' नई आई पुरानीको दूर करेंगेकी कहावत हर एक

जगह हरएक चीजमें चरितार्थ होने लगी। निस्संदेह यह एक स्वभाविक बात है और इसकी सत्यतामें किसीको भी संदेह नहीं हो सकता। कौन ऐसा पुरुष है जो रुपयेको छोड़कर पैसेपर हाथ डाले। एक घंटेमें ५० मील न चलकर २ मील चलना पसंद करे। नईको छोड़कर पुरानीपर जमा रहे और हानिपर हानि उठाता रहे। जिसमें जरा भी बुद्धि है, वह कभी ऐसा न करेगा। संसारमें जितने पुरुष हैं वे सब इसी सिद्धान्तके अनुयायी हैं और इसीमें अपनी उन्नति समझते हैं, यहांतक कि इसका सर्वत्र मान है और विशेष कर हमारा जैनसमाज तो इसपर जी जानसे मोहित है। उसने रेल तार वगैरहपर ही संतोष नहीं किया, किंतु इस कहावतकी सीमाको इतना बढ़ाया कि अपनी जातीयसभाओं और संस्थाओंपर भी चरितार्थ करके अपने लिए समयके अनुसार बढ़नेवाली समाजका सरटीफिकेट प्राप्त कर लिया। उसका विचार है कि जिस तरह पुरानी चीजका स्थान नई चीजोंने ले लिया है और लेती जाती हैं, इसी तरह हमारी नवीन सभाएं और संस्थाएं भी पुरानी संस्थाओंका स्थान लेती रहें और पुरानी अंधकारमें पड़ी रहें। नई सस्थाएं स्थापित करते रहें और पुरानीको छोंडते रहें। इसहीका परिणाम है कि हमारे समाजमें एक भी संस्था उन्नत अवस्थामें नहीं है, जिसे देखो वही पतित अवस्थामें मिलेगी। हां यह जरूर है कि जब कोई संस्था नई स्थापित होती है तो थोड़े दिनोंतक तो उसकी खूब उन्नति होती है, समाचारपत्रोंमें उसका आंदोलन होता है और हर एक हर्ष व शोकके अवसरपर उसके लिए हाथ पसारा जाता है। लिक्खाड़े अपने लेखोंमें और व्याख्याता अपने लम्बे

चौड़े व्याख्यानोंमें उसीका गीत गाते हैं और झूठी सच्ची तारीफोंके पु
बांध देते हैं। पर जब थोड़े दिनोंके पश्चात् कोई दूसरी संस्था स्थापित
होती है तो लोगोंका तमाम जोश और उत्साह पुरानीकी तरफसे
हटकर नवीनकी तरफ आने लगता है और एक दिन वह आता
है कि पुरानीको कोई पूछता तक नहीं। इसी तरह सब अधूरी हा-
लतमें रह जाती हैं और एक भी उन्नति अवस्थापर नहीं पहुँचतीं।

हमें अच्छी तरह याद है—९,१० साल हुए कि जब निरं-
जीलालजीने हिसारमें अनाथाश्रम खोला था तो हर जगह उस-
का ही जिकर था। मेले उत्सवोंपर महासभा वगैरहके कामोंको न
पूछकर अनाथाश्रमको ही सब कोई तन मन धनसे सहायता देते
थे। हमने स्वयं देखा है कि कुछ युवक तो हर समय लाठी सोटेसे
तैयार रहते थे और बड़ेसे बड़े तकको नीचा दिखानेमें जरा भी न
डरकर आश्रमका बाल बांका न होने देते थे। परंतु अब अनाथा-
श्रमका कोई नाम भी नहीं लेता। यह भी मालूम नहीं कि वह कहां
और किस हालतमें है। कोई नहीं पूछता कि वह क्यों अधम
अवस्थामें पड़ा हुआ अपने जीवनके दिन काट रहा है और अप-
घातके लिए कटिबद्ध हो रहा है? चाहे अनाथ बच्चे भटकते
फिरें, चाहे वे गली गलीकी ठोकरें खाते फिरें, चाहे उनको कोई
पकड़कर उनसे पशुवत व्यवहार करे, पर किसीको उनकी
सुधि नहीं। समितिकी भी यही दशा है—कहां तो वह
समिति जो ११, हजारका बजट पास करती थी और कहां
अब वही समिति जिसको रुपयेके अभावसे अपने विद्यालयकी उच्च
कक्षाओंको तोड़ना पड़ा और स्वयं कर्जदार हो गई। महासभाको

देखो, उसकी भी गणना इन्हींमें है। कहा तो उसका वह जैन गजट जो तमाम पत्रोंमें मुख्य समझा जाता था। जिसको योग्य सम्पादकोंकी प्राप्ति होती थी, और अब उसी गजटकी कैसी दशा? जैसी कि शायद भारतवर्षके किसी अभागे पत्रकी हो।

हमको भय है कि कहीं यही दशा हमारी आशाके केंद्र और जातिके स्थम्भस्वरूप श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रमकी न हो। हमको अच्छी तरह याद है कि जो जोश आश्रम खुलनेसे पहले या खुलनेपर था, वह अब बहुत कम होगया और होता जाता है। आश्रमके गत वार्षिक अधिवेशनपर हमको पूर्ण आशा थी कि इतने समारोहमें कमसे कम एक लाख रुपयेकी आश्रमको अवश्य प्राप्ति होगी, परंतु शोक है कि पत्थरोंको पिघला देनेवाली वक्तृताओंसे भी केवल पांच छह हजार रुपयोंकी ही बोलियां हुईं। इससे पूर्ण भय है कि जब अभी यह दशा है, जब सर मुंडाते ही ओले पड़ने लगे तो दो चार वर्षके बाद तो न जाने क्या अवस्था होगी? आश्रम खुलनेसे पहले बहुतसे अपने जीवनको आश्रमार्थ न्योछावर करनेको तैयार थे, तैयार ही नहीं, किन्तु करचुके थे। पर अब न जाने क्या मक्खी मार गई कि होते हुवाते भी घटतीका ही पहरा है। इसी चिंतासे बेचारे भगवानदीनजी रोगग्रसित हो रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि दो चार वर्ष बाद इस आश्रमकी भी वही दशा होजाय, जो अनाथाश्रमकी हुई। अब तो किसी दूसरे आश्रमकी तैयारी करनी चाहिए, जिसमें लोगोंको पुनः जोश हो। हमको आशा है कि शीघ्र कोई न कोई संस्था स्थापित होगी जो ब्रह्मचर्याश्रमकी सारी सहानुभूतिको चुम्बक पत्थरकी तरह खींच

लेगी और कुछ दिनोंतक इस चमत्कारी दुनियांमें अपनी चमक दिखलाकर वह भी तीसरीके लिए राज्य सिंघासन छोड़कर, स्वयं वैराग्य धारण कर दीक्षा ले जायगी । मित्रो, यही कारण है कि यह जैनजाति उन्नति नहीं करती और जब तक यह दशा रहेगी अर्थात्–पुरानी संस्थाओंका अनादर और नईका असाधारण क्षणिक आदर रहेगा तबतक कोई उन्नतिकी आशा नहीं है। हम स्याद्वादी हैं। वस्तुमें अनेक धर्म मानते हैं। जातिकी अनेक आवश्यक्ताएं हैं। एकको याद रखकर, अन्यको भूल जाना, एकांत है। किसी न किसी अपेक्षासे प्रत्येक संस्था उपयोगी है। इसलिए प्रत्येकका आदर करना हमारा धर्म है। किसी एकपर लुब्ध हो जाना भूल है। हमें सबको आवश्यक समझ कर सबकी ओर यथेष्ट ध्यान देना योग्य है।

नवीन संस्थाओंका स्थापित होना बुरा नहीं है। यह तो बल्कि उन्नतिका चिन्ह है। जितनी अधिक संस्थाएं होंगीं, जितने अधिक समाचारपत्र होंगे, जितने कार्यालय होंगे, उतना ही अधिक लाभ है। परंतु पुरानी चीजोंसे सहानुभूति न रखना या नईसे क्षणिक सहानुभूति रखना हानिकारक है। जितने कार्य हम प्रारम्भ करें, पहले उनकी नींवको स्थिर करदें, तब नवीनके लिए उद्योग करें। इस समय विशेष कर अनाथाश्रम, शिक्षाप्रचारक समिति महासभा और ब्रह्मचर्याश्रम, इन चार संस्थाओंके जीर्णोद्धारका भार समाजको अपने सरपर उठाना अत्यंत आवश्यक है। अनाथाश्रममें लाखों रुपये समाजके लग चुके, चिरंजीलालजी आश्रमका काम करते करते विक्षिप्त होगए, अनाथ बालक इधर उधर मारे मारे

फिरने लगे और बेचारी विधवाएं महीनों विना खर्चके कष्टपर कष्ट उठाने लगीं पर अभीतक उसकी कुछ व्यवस्था न की गई। महासभा जिन उद्देश्योंसे स्थापित हुई थी वह अब उनको खो बैठी। वह भारतवर्षकी महासभा न रहकर केवल कुछ धनिकोंकी प्राईवेट सभा रह गई। उसका मुख्यपत्र जैन गजटनजर कैदमें फँसा हुआ अपने कष्टमय जीवनके स्वास पूरे कर रहा है।

जयपुर समितिके विद्यालय और छात्रालयकी बहुत दिनोंतक धूम धाम रही, पर अब रुपयेके अभावसे दोनों शिथिलताको प्राप्त हो गए। विद्यालयकी ऊंची कक्षाएँ टूट गईं। अध्यापकगण पृथक् होगए। स्थानीय कार्यकर्ता भी इधर उधर होगए। अब रहा ब्रह्मचर्याश्रम सो सालभर तक इसका भी खूब प्रकाश रहा, पर अब वह भी कार्यकर्ताओंके अभावसे टिमिटमाने लगा है। ये सब बातें नई आई पुरानीको दूर करेंगे, की लोकोक्तिके प्रतापसे हुईं और जब-तक यह एकांत उक्ति हमारे आपके दिलोंसे न जायगी, तब तक ये त्रुटियां भी दूर न होंगी।

समाजसेवक
दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए.
ललितपुर.

मनकी मौज।

(१)

मेरे पास पैसा तो था, पर बहुत थोड़ा और मुझे अपने विवाहके लिए अधिक पैसेकी जरूरत थी। मैंने पैसेके लिए बड़े बड़े धनवा-

नोंकी खूब सेवा की। उन्होंने दिनको रात और रातको दिन कहा मुझे भी उनकी हांमे हां मिलानी पड़ी, पर तब भी मेरी आशा पूरी नहीं हुई। मैंने पैसे जोड़नेका बहुत उपाय सोचा पर मेरी अकलशरीफमें कुछ भी नहीं आया। मुझे अपने गौरवका बहुत कुछ खयाल रहता है इसलिए पैसे जोड़नेकी अकल मैं दूसरेसे भी न पूछता था। भला इस छोटीसी बातके लिए मुझे अपना गौरव खोना कब स्वीकार हो सकता था। पर जब किसी तरह काम न चला तब लाचार होकर मुझे इस विषयमें अपने मित्रसे सम्मति लेनी ही पड़ी। मैं नहीं जानता था कि मेरा मित्र इतना बुद्धिमान होगा। जिस विचारके लिए मेरी आधी जिन्दगीके करीब खराब होगई और तब भी उसे मैं नहीं सोच सका, वही बात मेरे मित्रने सुनते ही झटसे बतादी उसकी बुद्धिका चमत्कार देखकर मैं तो दंग रह गया।

उसने मुझसे कहा कि—तुम इस छोटीसी बातके लिए इतनी चिन्तामें क्यों पड़े हो? इसका तो सहज उपाय है। आजकल जैन जातिमें प्रतिष्ठाएं बहुत हुआ करती हैं। वर्षभरमें दो चार कहीं न कहीं होही जाती हैं। तुम भी बस यही काम करना सीखो। इसके द्वारा तुम बहुत जल्दी अच्छे धनवान और जमीदार गिने जाने लगोगे। तुम यह कभी मत समझो कि ये प्रतिष्ठाएं पहले सरीखी होती हैं, जो प्रतिष्ठाकारकने खुशीसे दिया वही ले लिया। नहीं, तुम तो प्रतिष्ठाकारकोंसे दिल खोलकर हजार, दो हजार, चार हजार ठहराकर लिया करना। अब तो उदारचेता प्रतिष्ठाचार्योंने यह एक कानूनसा जारी कर दिया है, जिससे आगे कुछ झंझट न हो। हां तुम एक बात और याद रखना। इसमें भूल कभी मत

करना। वह यह कि प्रतिष्ठाकारककी चोटी सदा अपने हाथमें रखना, जिससे वह कभी कुछ गड़बड़ न करे। इतनेपर भी वह यदि कुछ गड़बड़ करे तो फिर तुम भी शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात् की चाल चलकर प्रतिष्ठाके ऐन मौकेपर पसर जाना और विना किसी लाज शर्मके साफ सांफ कह देना कि इतने रुपये अभी दें तो प्रतिष्ठाका काम आगे कराते हैं, नहीं तो आप अपना दूसरा प्रबन्ध कर लीजिए। उस समय झख मारकर वे तुम्हें रुपया देंगे। बस इसी तरह दो चार प्रतिष्ठाएं कराई कि तुम्हारे पौ बारह हैं। इस विषयमें दोचार बातें तुम्हें और भी समझानेकी हैं पर अभी मुझे जल्दी है इसलिए फिर कभी समझा दूंगा।

पाठक ! है तो यह गूढ़ रहस्य, पर क्या करूं मेरी उदारता मुझे इसके छिपानेसे रोकती है। इसलिए मैंने आपको इस महामंत्रकी कुंजी बतलादी है। मेरी तो सदा यह इच्छा बनी रहती है कि सभी लाभ उठावें। और सब नहीं तो मुझसे अभागोंकी भी तो जैन समाजमें कमी नहीं है। वे ही लाभ उठाकर मेरा आभार माने।

(२)

कुछ दिनों बाद मेरे कार्यारंभका श्रीगणेश हुआ। एक सेठ साहबका मेरे पास पत्र आया। उसमें लिखा था कि हमने एक नवीन मन्दिर तैयार करवाया है। उसकी प्रतिष्ठा करनी है। हमारी इच्छा है कि इस भारको आप अपने ऊपर लेनेकी कृपा करें। पत्र पढ़कर मुझे जो खुशी हुई वह मैं ही जानता हूं। मैंने उसी समय पत्रमें कुछ इधर उधरकी चापलूसीकी बातें लिखकर अपने आनेकी सेठजीको सूचना देदी। मेरा कोई दुश्मन इस काममें रोड़ा

न अटकादे इसलिए दूसरे ही दिन मैंने चलनेकी भी तैयारी करदी।

रास्तेमें मुझे एक प्रसिद्ध जैन संस्था मिली। मैं बहुत दिनोंसे उसकी तारीफ सुना करता था। आज अनायास इस सं-योगको देखकर मैं उसे देखनेके लिए उतर पड़ा। उसे देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। शामके वक्त मुझे उसके विद्यार्थियोंसे बात चीत करनेका मौका मिला। जब मैंने उनलोगोंके विचार सुने तब तो मुझे कलेजा थामकर रह जाना पड़ा। मुझे क्या मालूम था कि ये शैतान विद्यार्थी मेरी आशापर पानी फेरनेवाले होंगे? पाठक! सुनिए तो इन शैतानोंके विचार, न मालूम दूसरोंका माला-माल होना इन्हें क्यों खटकता है? ये कहते हैं कि—"हम लोगोंको प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि अबसे हम प्रतिष्ठा करनेका भार अपने उपर लें। इन आज कलके प्रतिष्ठाचार्योंने हमारी जातिको त-बाह करदी है। उसका इनके पञ्जोंसे उद्धार करें। साथमें हमें यह भी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए कि हम प्रतिष्ठाकारकोंसे अपने स्वार्थके लिए एक पैसा भी न लें और प्रतिष्ठाका काम सम्पन्न करादें। क्यों सुनी इन विद्यार्थियोंकी शैतानी? अच्छा तुम्हीं कहो क्या इनके ये विचार उच्च हैं? मान लिया जाय कि इन्होंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार यदि काम जारी कर दिया तब मेरी तो शामत आ जायगी। बड़ी कठिनाईसे तो यह पहला श्रीगणेश हुआ था कि बीचमें यह कांटा खड़ा होगया। मैं बड़ी चिन्तामें पड़ा। मेरे तो होस हवास सब गुम होगये। मैं कहां जाना चाहता था इसकी मुझे कुछ खबर नहीं रही। इन शैतानोंने तो अपनी करनीमें कुछ कसर नहीं रक्खी, पर मुझसा दुखियाका भी तो भगवान रक्षक है। मुझे झटसे

बुद्धि सूझ ही तो गई। मैंने विचारा कि जबतक ये लोग अपना काम आरंभ न करें उसके पहले ही जितने प्रतिष्ठाचार्य हैं उनकी एक कॉन्फरेन्स कर डालनी चाहिए और सबकी सम्मतिसे नीचे लिखे प्रस्ताव पास करके गवर्नमेन्टसे उस विषयका हक्क प्राप्त कर लेना चाहिए, जिससे फिर ये हजार सिर पटक पटक कर मरजायं तब भी इनकी कुछ न चले और अपनासा मुहँ लेकर रह जायँ। पाठक! एक नजरसे आप भी प्रस्तावोंको पढ़ लीजिए—

प्रस्ताव नं. १ प्रतिष्ठाचार्यकॉन्फरेन्स प्रस्ताव करती है कि जैन जातिमें जितनी प्रतिष्ठाएं हुआ करें उनके करनेका अधिकार इस कॉन्फरेन्सके अधिकारियोंको ही होगा। उनके सिवा कोई प्रतिष्ठा नही करा सकेगा।

प्रस्तावना नं. २—उक्त प्रस्तावका हक्क मिलनेके लिए यह कॉन्फरेन्स गवर्नमेन्टसे प्रार्थना करती है और उसके लिए इतना वार्षिक गवर्नमेन्टको यह कॉन्फरेन्स नियमित रूपसे दिया करेगी।

क्यो पाठक! प्रस्ताव तो योग्य न है? तो बस अब मुझे इसकी अमली कारवाई करनी चाहिएं। फिर देखूंगा ये लोग क्या करते हैं। (दिलमें खुश होकर) बच्चा! याद रक्खो मैं कोई ऐसा वैसा आदमी नहीं हूं जो तुम्हारी धमकीमें आकर अपने कामसे हाथ धो बैठूं। किन्तु इसे इतना दृढ़ कर दूंगा कि जिससे हम लोगोकी पीड़ियों दर पीड़ियोंकी सन्तान भी लाभ उठा सके। बस तो ले अब मैं जाता हूं!

मौजी।

खण्डेलवालोंकी गहरी नींद।

जगानेके लिए हर तरहके उपाय किये जानेपर भी न जगने वाली यदि संसारमें कोई जाति है तो वह खण्डेलवाल जाति। उसे सचेत करनेके लिए—अपनी हालतका ज्ञान करानेके लिए—सभा स्थापित की गई, उसमें उपयोगी प्रस्ताव पास किये गये, समाचार पत्र प्रकाशित किया गया तब भी वह उसी गहरी नींदमें सोई हुई है। उसकी यह नींद कब खुलेगी इसका कुछ टिकाना नहीं। और न सहसा यह आशा की जाती है कि वह जल्दी जगकर अपने काममें लग जायगी। इसे सिवा खण्डेलवालजातिके अभाग्यके और क्या कहा जा सकता हे? इसका कारण यह कहा जा सकता है कि वह यह नहीं जानती कि संसारमें हमारी सृष्टि केवल सोनेके लिए हुई है या कुछ काम करनेके लिए? जब उसे इस बातका ज्ञान हो जायगा तब संभव है कि वह कुछ करनेके लिये बाध्य हो। पर वह दिन इस जातिके लिए अभी बड़ी दूर है। क्योंकि भले बुरेका ज्ञान शिक्षासे होता है और खण्डेलवालजाति शिक्षामें संसारकी प्रायः जातियोंसे पीछी पड़ी हुई है। यदि इस वक्त केवल हम व्यवहारिक ही शिक्षाको लेकर उससे खण्डेलवालजातिके सम्बन्धकी जांच करे तो हमें बडा भारी खेद होगा कि आज जैनियोंकी सब जातियोंमें खण्डेलवालोंकी गणना अधिक होने पर भी वह शिक्षासे नितान्त शून्य है। क्या यह खेद और आश्चर्यका विषय नहीं है कि सारे मालवेप्रांत और महाराष्ट्रप्रान्तमें खण्डेलवाल जातिमें

एक भी बी. ए. या एम. ए. पास किया हुआ ग्रेज्युएट न हो? ग्रेज्युएट की तो जाने दीजिए, इससे नीची श्रेणीका भी शायद ही कोई मिलेगा। खैर, अंग्रेजी भी जाने दीजिए—हिन्दीका, जो कि हमारी मातृभाषा है, मिडिल पास किया हुआ भी मिलना मुझे तो कठिन प्रतीत होता है। जब व्यवहारिक भाषाका, जिससे कि प्रतिदिन हमें काम पड़ता है, यह हाल है तब धार्मिक विद्याकी बात तो उससे दूर ही समझनी चाहिए। जिस जातिकी ऐसी सोचनीय दशाहै—जो जीती हुई भी मृत्युशय्यापर पड़ी हुई है—उससे भविष्यके सुधारकी क्या आशा की जा सकती है? सौ सवासौ ही वर्षोंमें इस जातिका जैसा अधःपात हुआ है, इतना जल्दी शायद ही किसी जातिका हुआ होगा? इतनेपर भी वह अपने उठनेका कुछ उद्योग नहीं करती है। खण्डेलवालो! अब तो अपनी इस नींदको जलाञ्जलि दो, और जो कुछ बचा है उसीकी रक्षा करो। अथवा इसे भी तुम नष्ट करना चाहते हो तो खूब सोओ और आनन्द भोगो। देखना, चाहे जाति नष्ट होजाय पर तुम कभी अपने व्रतका भङ्ग न करना। तुम्हारी उज्वल कीर्त्ति इसीसे दिगन्त व्यापिनी होगी—इसीसे तुम संसारमें अपने नामको अमर कर सकोगे। हा हतभाग्यजाति! वह दिन बहुत बुरा था जिस दिन संसारमें तेरा नाम संस्करण हुआ था। नहीं तो क्यों आज तेरी सन्तान इस तरह गफलतकी नींद सोती रहती? तेरी बुरी हालत देखकर भी उसे दया न आती? हम सरीखे स्वार्थियोंने तेरे नाम को, तेरे कुलको, कलंकित बना डाला है। हम सरीखा अधम—किये

उपकारको भूल जानेवाला—संसारमें शायद ही कोई मिलेगा। हां और यह कैसी आश्चर्य जनक स्थिति कि यदि हम कुछ भी तेरी सेवा करनेको समर्थ न होते—हमारे पास तेरी सेवाके योग्य यदि उचित साधन न होते—तब कदाचित् यह मान भी लिया जाता कि हम दरिद्र हैं क्योंकर तेरी सेवा कर सकेंगे ? पर इस समय तो उन्नतिके जितने साधन हैं वे सहजश्रमसे प्राप्त किये जा सकते हैं। केवल इतनी ही देरी है कि हम तेरी हालत देखकर यह जानलें कि तू बड़ी बुरी अवस्थामें पड़ी है। चाहे कुछ भी हो तेरे उद्धारके लिए हमें संकट सहना पड़े सहेंगे, जीवन देना पड़े देंगे, परंतु एक वक्त फिर उसी हालतमें तुझे पहुंचा देंगे जिस हालतमें तू अपने पुत्ररत्न टोडरमलजी, अमरचन्दजी, आदिके समयमें थी। उस समय निःसन्देह तेरा पुनरुत्थान हो सकता है। पर जरूरत है हमारे हृदयोंके उदार होनेकी। वे बहुत संकीर्ण होगये हैं। उन्हें अपनेसे दूसरोंकी उन्नति अच्छी नहीं जान पड़ती है। वे कैसे उदार हो सकेंगे ? कैसे उनमें उच्च विचारोंका प्रवेश हो सकेगा ? इसके अनुष्ठानकी जरूरत है। पर यह अनुष्ठान तो विना शिक्षाके नहीं किया जा सकता। अथवा यों कहलो कि शिक्षित पुरुष ही इस विषयके पात्र हो सकते हैं। और हममें तो शिक्षाकी गंध भी नहीं, जिधर देखो उधर अज्ञान ही अज्ञान दिखाई पड़ता है, सारी खण्डेलवाल जाति शिक्षासे अपना मुहँ फेरे बैठी है, तब उच्च विचारोंका उसमें प्रवेश हो यह तो अभी कल्पना मात्र है। अभी तो इसी की जरूरत है कि उसमें पूर्ण रीतिसे शिक्षाका

प्रचार किया जाय। जबतक वह अपनेको उच्च विचारोंका पात्र न बनालेगी तबतक उसके द्वारा भलाईकी आशा केवल आशा मात्र है।

जातिके हितचिन्तको! देखिए न? आज तुम्हारी जातिमें शिक्षाके न होनेसे उसे सब बातोंमें पीछा रह जाना पड़ता है, वह किसी काममें अपनेको आगे नहीं बढ़ा सकती। क्या हम लोगोंके लिए यह लज्जाकी बात नहीं है हम कर्त्तव्य सम्पादनके लिए जन्म लेकर भी आज अपने उद्देश्यको भूल गये हैं। क्या केवल इस अकर्मण्य दशामें ही हमें अपने पवित्र जीवनकी समाप्ति कर देनी चाहिए? यह हमारी नितान्त भूल है। अब हमें अपनी दशा सुधारनी चाहिए। हमारा जन्म इसीलिए हुआ है। अब समयकी अरोक गतिको देखकर अपने आलसको—गहरी नींदको—छोड़िए और जातिके हित साधनमें लगिए, यह हमारी प्रार्थना है।

सम्पादकीय विचार।

१—क्षुल्लक मुन्नालालजीका केशलौंच।

बैसाख विदी ११ से सुदी १ तक हरदामें रथोत्सव होगा। सुना है कि इसी अवसरपर हरदाके जैनी भाई क्षुल्लकजीके केशलौंचका उत्सव करावेंगे। यह जानकर बहुत प्रसन्नता होती है कि कुछ त्यागी महात्माओंकी कृपासे इस कठिन समयमें भी जैनसाधुओंका स्मरण होने लगा है। प्राचीन समयकी कुछ कुछ झलक—आभास—दीख पड़ने लगी है। पर साथ ही शास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लंघन देख-

कर चित्तपर आघात पहुंचता है। यदि हरदाके भाई शास्त्रमर्यादासे अपरिचित हों तब भी क्षुल्लकजी महाराजको तो उसपर खयाल करना चाहिए। ऐसे ऊंचे पदके धारकोंके द्वारा ही जब शास्त्रमर्यादाका तिरस्कार किया जाता है तब साधारण लोग उसपर न चलें तो वे फिर कैसे अपराधपात्र कहे जा सक्ते हैं। महाराज! जरा देखिए तो, शास्त्र, क्षुल्लकको केशलौंचके लिए क्या आज्ञा देता है?

प्रथमस्य स्वरूपं तु वक्ष्यहं त्वं निशामय।
श्वेतैकपटकौपीनो वस्त्रादिप्रतिलेखनः।
कर्तर्या वा क्षुरेणासौ कारयेत्केशमुण्डनम्॥

अर्थात्—क्षुल्लकका लक्षण यह है कि वह सफेद वस्त्रकी लँगोटी रक्खे और वस्त्रकी अथवा मयूरकी पिच्छी शोधनेके लिए रक्खे। और कतरनी वा उस्तरेसे बाल कटवावे वा मुण्डन करावे।

हम नहीं जानते कि शास्त्रकी उक्त प्रकार मर्यादाके होनेपर भी क्षुल्लकजी क्यों केशलौंचका नया ढोंग बनाकर समाजको धोखा देते हैं? इसका कुछ गूढ़ तत्व होना चाहिए। यदि हम गल्तीपर न हों तो कह सक्ते हैं कि महाराजके हृदयको एक भारी आकांक्षाने मलिन कर रक्खा है। वह क्या? यही कि औरोंकी तरह हमारा भी सम्मान हो। बस, इसके सिवा और कोई इस मनमानी प्रवृत्तिका कारण नहीं देखते। महाराज! क्षमा कीजिए, हमारी इस गुस्ताखी पर। पर फिर भी इतना कहेंगे कि यदि आप पुनः गृहस्थपद वापिस लेलें तो समाज आपका बड़ा आभारी हो। आपकी अलौकिक लीला देखकर समाजके जानकार प्रतिष्ठित सज्जनोंको दांतोंमें अंगुली दबाना पड़ती है। हम आशा करते हैं कि क्षुल्लकजी समाजका मुख

उज्वल करनेकी ओर अपनी प्रवृत्तिको झुकावेंगे। हरदेके पञ्चोंसे भी प्रार्थना है कि वे शास्त्रकी मर्यादाका पालन करनेके लिए क्षुल्लकजीको केशलैंचके लिए वाध्य न करेंगे।

२-आधुनिक और प्राचीन।

आजकल जैनसमाजमें आधुनिक कौन है और प्राचीन कौन है? इस विषयमें वडी मीमांसा होती है। दिगम्बरी कहते हैं कि हम प्राचीन हैं और श्वेताम्बरी आधुनिक। श्वेताम्बरियोंका कहना इससे विपरीत है। पर वास्तवमें सच्ची वात क्या है? वह अभी इतिहासके गर्भमें है। इस समय जो दोनों ओरके सज्जन अपनी अपनी इमारत जिस नींवपर खड़ी करते हैं उसे इकतरफा होनेसे वहुत कम लोगोंपर उसका असर पड़ता है। फिर कषायोंके वश किसी एक पर कटाक्ष करना या उसे आधुनिक कहना अनुचित है। पाठकोंको स्मरण होगा कि जैनशासनकी गत संख्यामें अप्रासङ्गिक दिगम्बरियोंपर कटाक्ष किया गया है कि "आधुनिक दिगम्बरी लोग अपने धर्मको प्राचीन वतलानेके लिए जहां तहां श्वेताम्बरी तीर्थोंपर अपनी प्रतिमा स्थापन करके और धीरे धीरे पांव पसारकर पीछे मालिकीका हक्क सिद्ध करते हैं। यह उन्हें शोभता नहीं। उन्हें याद रखना चाहिए कि सत्यकी ही जय सदा हुआ करती है-आदि।" यह कथन कहांतक सत्य है इस विषयमें हम कुछ नहीं कहते। अच्छा शासनजी! हम आपके कहे अनुसार यदि यह मानलें कि, दिगम्बरी आधुनिक हैं, पर यह तो कहिए कि आप आधुनिकका इतना अनादर क्यों करते हैं? क्यों उन्हें अपने गहरे वाग्वाणोंका निशाना वनाते हैं! आखिर हैं तो वे आपके ही भाई। क्या उनके साथमें

आपको यही व्यवहार शोभा देता है ? कुछ तो जमानेको देखिये कि वह हमें क्या करनेको कहता है। जैनजातिकी आज कैसी हालत है ? हमें उसका सुधार करना चाहिए या इसी आपसकी कटाकटीमें मर मिटना चाहिए। और जब पढ़े लिखोंकी ही यह हालत है तब हम अपने असमझ भाइयोंको कैसे सुमार्गपर ला सकेंगे ? दूसरे यह भी तो कहिए कि क्या जो आधुनिक होता है उसमें कुछ तथ्य रहता ही नहीं है ? यदि आपका यही अचल सिद्धान्त है–इसीपर आपको गाढ़ श्रद्धा है–तब कह देना होगा कि इस समय जो संसारमें एक अपूर्व युग दिखाई पड़ता है वह सब आपकी दृष्टिमें तुच्छ है। फिर आपको भी तो आधुनिक कर्त्तव्योंसे बचना चाहिए। क्यों इस आधुनिक प्रवाहमें पड़कर इतनी तकलीफ उठाते हो। सब छोड़ो और प्राचीनकी ही शरण लो। शासनजी ! क्षमा कीजिए। हमने यह किसी द्वेषभावसे नहीं लिखा है और न अब हमारे वैसे विचार हैं जिनसे कि इस घरेलू कलहकी अग्नि भभके। आप भी अब शान्त होकर उस पथका अनुसरण कीजिए जिससे इस अभागे जैनसमाजका भला हो। अब आपसकी कटा-कटी अच्छी नहीं है यह आप खूब अच्छी तरह ध्यानमें रक्खें। क्या हमारी प्रार्थनापर ध्यान देंगे ?

३–जैनसमाजको बहुत जल्दी चेतना चाहिए।

हमने धरणगांवके एक सम्वाददाताकी चिट्ठी आगे प्रकाशित की है। उससे विदित होता है कि खानदेशमें ओसवाल जातिके डेढ़ दोसौ घर हैं। उनमें कई कारणोंसे यहांतक नौबत आ पहुँची है कि परस्परमें बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होनेपर भी शादी विवाह होजाते हैं।

इसके सिवाय उस जातिके लिए कुछ गति ही नहीं है। इसी प्रकार कठनेरा, बदनेरा आदि जातिके लोगोंके भी बहुत थोड़े थोड़े घर हैं। इन जातियोंमें विवाहके समय बड़ी कठिनता पड़ती है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यह कठिनता कैसे दूर की जाय ? और जबतक इस कठनाईके हटानेका कुछ उपाय न किया जायगा तबतक संभव नहीं कि इन जातियोंका अस्तित्व संसारमें कुछ दिनोंतक भी रह सके। गत मर्दुमशुमारीको देखते हुए जब समूचे जैनसमाजकी स्थितिपर लक्ष्य दिया जाता है तब उसका अस्तित्व भी मुश्किलसे दोसौ वर्षतक ठहरता है तब छोटी छोटी जातियोंके अस्तित्वके सम्बन्धमें तो बड़ी गहरी समस्या है कि उनका क्या हाल होगा ? जैनसमाजमें घटनेके तो अनेक साधन मौजूद हैं और दिनपर हमारी अज्ञानतासे उसमें ऐसे कारणोंकी और भरती होती जाती है। पर वृद्धिके कुछ भी कारण नहीं हैं। तब हमें क्या उपाय करना चाहिए जिससे उसकी वृद्धि होने लगे। यदि अब भी इस गफलतकी नींदको हम न छोड़ेंगे--अपने भयंकर ह्रास-पर लक्ष्य न देंगे--तो हमें बहुत जल्दी संसारसे उठ जाना पड़ेगा। एकदम भगवान महावीरके पवित्र मार्गका नाम निशान उठ जायगा। जातिके हितचिन्तको ! उठो, और गिरती हुई इस पवित्र जातिको बचाओ।

हमारी समझके अनुसार हमें अपने ऋषियोंकी उस पवित्र आज्ञाका पुनरुद्धार करना चाहिए जिसे कि हमारी रूढ़िने दबा रक्खी है। वह आज्ञा क्या ? यही कि वर्णव्यवस्थाके अनुसार जिस वर्णका जिस वर्णके साथ बेटीव्यवहार और भोजनव्यवहार शास्त्रोंमें बत-

लाया गया है उसीके अनुसार हम अपनी प्रवृत्ति करें। जैन-पुराणों और चरित्रोंमें ऐसे उदाहरणोंकी आज कमी नहीं है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंमें जिन वर्णोंके साथ जिस वर्णको विवाह करनेकी आज्ञा थी वैसे सम्बन्ध हुए हैं। उस समय तो हमारी संख्या भी बहुत:थी तब भी ऐसे सम्बन्ध होते थे। फिर जब कि हमारी संख्या बहुत कम और वह भी दिनपर दिन घटतीपर, तब क्यों न हम अपनी जातिकी भलाईके लिए परस्परमें रोटीबेटीका व्यवहार करने लगे? क्या हममें इतनी भी शक्ति—हिम्मत—नहीं जो पुरानी और जातिमें घुनका काम करनेवाली रूढ़िको हटा सकें। यदि इस प्रगतिके जमानेमें शास्त्रकी मर्यादापर भी खयाल न करके हम रूढ़िके गुलाम बने रहें तो कहना चाहिए कि हममें मनुष्यपना नहीं है। हम उस जड़ रूढ़िसे भी गये बीते हैं जिसने कि हमें अपनेसे भी निकम्मा—निस्सार—बना रक्खा है। इसीसे कहते हैं कि अब जैनसमाजको शीघ्र ही सचेत होकर अपनी भलाईका रास्ता ग्रहण करना चाहिए।

पुस्तक--समालोचन।

सामायिक पाठ—अमितगतिसूरिके मूलग्रन्थका बङ्गला अनुवाद। बाबू देवेन्द्रप्रसादजी मंत्री बङ्गीयसार्वधर्मपरिषद द्वारा प्रकाशित। अमूल्य। प्रकाशक द्वारा प्राप्त।

यह एक बत्तीस श्लोकोंका छोटासा ग्रन्थ होनेपर भी बड़ा ही उत्तम और सुन्दर है। पढ़नेसे चित्तको बड़ी शान्ति मिलती है। इसमें, प्रतिदिनके व्यवहारमें होनेवाले सावद्य (पाप) कर्मोंकी आलोचना,

और ईश्वरप्रार्थना वड़े ही हृदयग्राही शब्दोंमें की गई है । अनुवाद सरल होनेपर भी कितनी जगह मूल श्लोकोंके भावसे च्युत होगया है। उदाहरणके लिये नीचे श्लोकको देखिए—

क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गा रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥

अनुवादक महाशयने इसका अर्थ लिखा है कि जिसने सब जीवोंको अपनी गोदमें धारण कर रक्खे हैं, जिसमें रागद्वेषादि दोषोंका लेश भी नही है और जो निरिन्द्रिय, ज्ञानस्वरूप, अविनाशी है। वह देवाधिदेव हमारे हृदयमें विराजमान हो । अनुवादकने जो क्रोडीकृताशेष-शरीरिवर्गाः इस पदको ईश्वरका विशेषण बनाया है, वह ठीक नहीं है। इसे रागादिक दोषोंका विशेषण लिखना चाहिए था । जिसका अर्थ यह होता कि जिन रागादि दोषोंने सारे संसारके जीवोंको अपनी गोदमें धारण कर रक्खे हैं—उन्हें अपने वश कर रक्खें हैं—उन रागादिका लेश भी जिस परमात्मामें नहीं है, वही इन्द्रियरहित, ज्ञानस्वरूप और अविनाशी देवाधिदेव हमारे हृदयमें विराजमान हो । अच्छा होता यदि छपानेके पहले यह किसीको दिखा लिया जाता ।

वार्षिक रिपोर्ट—जैनसिद्धान्तपाठशालाके दूसरे वर्षका संक्षिप्त विवरण । मंत्री विश्वंभरदासजी द्वारा समालोचनार्थ प्राप्त । रिपोर्टके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि जैनसिद्धान्तपाठशाला जबसे स्थापित हुई है तबसे वह दिनोंदिन उन्नतिपर है । जिस उद्देश्यको लेकर इसकी स्थापना की गई थी उसे इसने अच्छी तरह निवाहा है । जबसे जैनसमाजमें कुछ कुछ जागृति हुई है और जगह जगह छोटी बड़ी पाठशाला या विद्यालय खुले हैं तबसे उनके द्वारा इतना तो

लाभ अवश्य हुआ है कि जैनसमाजमें कुछ कुछ संस्कृत विद्याका पुनरुत्थान होने लगा है। दो चार अच्छे अच्छे विद्वान भी निकल चुके हैं और निकलनेकी आशा है। पर धार्मिक विद्याकी कमीसे उन विद्वानोंके विद्याकुसुमकी सौरभ दिगन्त व्यापिनी न होगी। और न ऐसी दशामें उनके द्वारा जैनधर्मका विशेष उपकार हो सकेगा। इस लिए जरूरत है कि संस्कृतके साथ साथ धार्मिक विद्याका भी पूर्ण प्रचार हो। धार्मिक विद्याका प्रचार इस समय जैसा जैनसिद्धान्त-पाठशालाके द्वारा हो सकता है वैसा किसीसे नहीं। इसलिए हम जैन समाजसे सानुरोध निवेदन करते हैं कि वह अपनी प्यारी इस संस्थाको पूर्ण सहायता पहुंचावे।

यह सौभाग्य इसी पाठशालाको प्राप्त है कि इसके संरक्षक हमारी जातिमें जैनसिद्धान्तके एक अपूर्व विद्वान है। आपकी निष्का-मसेवासे जैनसमाज अपरिचित नहीं है। आप सरीखे निष्कामयोगीके द्वारा चलनेवाली संस्थाको भी यदि जैनसमाजने सहायता न पहुंचाई तो कहना चाहिए कि उसके समान अभागा कोई समाज नहीं है। जिस समाजमें विद्वानोंकी यह हालत है कि वे मनमानी तनख्वाह लेकर भी अपना कर्तव्य पूरा नहीं करते उसमें केवल धार्मिक बुद्धिसे पढ़ाने वाले विद्वानके हाथ नीचेकी संस्थाको सहायता न दी जाय तो कितने खेदकी बात होगी? आशा है जैनसमाज इसपर पूर्ण ध्यान देगा।

समाचारसार।

दहलीका पत्र—गतांकमें दहलीके एक पत्रका सार हमने प्रका-शित किया था। उसका प्रतिवाद करानेके लिए हमारे पास श्रीयुत

सुमेरुचन्दजी सराफका पत्र आया है । उसमें आपने एक तो इस बातका प्रतिवाद कराया है कि हमारी सभाके नियमोंमें यह नियम नहीं है कि कुरीतियोंका प्रचार रोका जाय। दूसरे यह कि श्रीयुत रिक्खूमलजीने लड़का अपने भतीजेके लिए नहीं लिया है । अस्तु । दूसरे प्रतिवादकी भूलको तो पाठक सुधारलें । पर पहले प्रतिवादके सम्बन्धमें हमें यह कहना है--मान लिया कि आपकी सभाका नियम कुरीतियोंका प्रचार रोकना नहीं हैं । पर क्या इस नियमके न होनेसे आप यह अच्छा समझते हैं कि कुरीतियोंका प्रचार बढ़े ? भला यह तो सोचिए कि जब समझदार ही ऐसी दुष्प्रथाओंको न बन्द करेंगे तब और कौन करेगा ?

जयपुर--से बाबा शीलचन्दजी लिखते हैं कि " हमने इन्दौरमें प्रतिष्ठा, संस्कृतप्रतिष्ठापाठसे कराई थी । पर हां जहां कुछ अर्थ वगैरह देखना पड़ता था वह हम भाषामें देख लिया करते थे । इसलिए आप, प्रतिष्ठा, भाषाप्रतिष्ठापाठसे कराई गई थी, अपनी इस भूलको सुधार दें । " अच्छा बाबाजी ! हमने हमारी भूल आपकी आज्ञाके अनुसार सुधारली है । लीजिए पाठक ! आपको यह जान कर और खुशी होगी कि बाबाजी संस्कृत न जानते हुए भी संस्कृत प्रतिष्ठापाठसे प्रतिष्ठा करा सकते हैं । क्योंकि बाबाजीने हमारे इस लेखका प्रतिवाद नहीं किया है कि " **बाबाजीने संस्कृत न जानकर भी प्रतिष्ठा निर्विघ्न समाप्त करवा दी ।** " इस खुशीके लिए हम जैनसमाजसे बाबाजीकी शिफारिश करते हैं कि वे प्रतिष्ठाके लिए बाबाजीको ही बुलाया करें । जो कुछ हो, हम बाबाजीके एक गुणपर तो मुग्ध हैं कि वे प्रतिष्ठाकारकसे एक पैसा भी नहीं लेते हैं । इसके लिए बाबाजीको धन्यवाद है ।

अनुकरणीय दान—श्रीयुत दानवीर सेठ माणिकचन्द्रजीकी भतीजी विदुषी रतनबाईकी इह जीवनलीला गत २ मार्चको पूर्ण होगई। आप यदि कुछ दिन और चिरंजीव रहतीं तो इसमें सन्देह नहीं कि जैन समाजमें शिक्षित स्त्रियोंमें पहला नम्बर लेतीं। पर अभी जैनसमाजका इतना सौभाग्य कहां? आप वर्तमानमें इंग्लिशका अभ्यास करतीं थीं। इंग्लिशकी छह पुस्तकें आपने पढ़ली थी। आपकी इस असामयिक मृत्युका हमें बहुत खेद है।

रतनबाईने अपने अन्त समयमें स्त्रीशिक्षाके लिए (१५,०००) रु० का दान देकर जैनसमाजको सदाके लिए उपकृत कर दिया है। यदि सेठ साहब इस रकमके द्वारा जैनसमाजमें कन्याविद्यालयकी क्षतिको पूर्ण करें तो बहुत अच्छा हो। परमात्मा बाईजीकी पवित्र आत्माको शान्ति प्रदान करें।

धरणगांव—(खानदेश) हमारे इस प्रान्तमें ओसवाल दिगम्बरियोंके १५०—२०० घरके लगभग होंगे। वे कबसे श्वेताम्बरीके दिगम्बरी हुए हैं इसका कुछ ठीक ठीक हाल नहीं जान पड़ता। कुछ वर्षोंसे इस जातिमें मानकषाय और आग्रहके वशसे फूटका सञ्चार होगया है। तबसे इस जातिकी हालत दिनपर दिन बिगड़ती जा रही है। संख्याके ऱ्हासका क्रम बराबर जारी है। इस फूटका यहांतक बुरा परिणाम हुआ है कि आपसमें विवाह शादीतकका व्यवहार बन्द होकर परस्परमें बहुत कुछ बनिष्ठ सम्बन्धके रहते हुए भी विवाह शादी कर दिये जाते हैं। देखिए तो—यह कितनी बुरी बात है कि जिस लड़कीका विवाह जिस पुरुषके साथमें हुआ है उसीकी बहन उसी लड़केके पिताको—लड़कीके श्वसुरको—विवाह दी जाय। पर एक तो जातिमें थोड़े घर, उसमें भी फिर सत्यानाशिनी

फूट, तब कैसे ये अन्याय–अनर्थ–रोके जा सकते हैं। अगत्या ऐसा करनेको वाध्य होना पड़ता है। क्या जातिके हितैषी इन अनर्थोंके रोकनेका कुछ उपाय करेंगे? सज्जनो! इसी फूटने हमें आपत्तिके गड्ढेमें डाल रक्खा है। हम अपने ही अज्ञानसे अपनी पवित्र जातिका नाश करके उसे और भी नेश्तनाबूद करना चाहते हैं। जरा आंखें खोलकर देखो कि हमारी क्या दशा है? मैं आशा करता हूं कि हमारे भाई इस आपसी कलहका अपनी जातिसे काला मुहँ करके पुण्यकर्मका संग्रह करेंगे। **जिनदास जैन**।

पालिटका दान—सर तारकनाथ पालिट कलकत्ताके एक प्रतिष्ठित और पुराने वैरिस्टर हैं। आपने हालहीमें अपनी सब सम्पत्ति कलकत्ताके विश्वविद्यालयको जीते जी दान करदी है। इन १९ लाख रुपयोंसे विज्ञानशिक्षाको वड़ा लाभ पहुंचेगा। प्रतिष्ठा आदि अनावश्यक कार्योंके लिए लाखों रुपया लगा देनेवाले जैनियों! तुम भी तो कुछ अपनी जातिके लिए करो।

टीनमें विप—विलायतकी एक मेम तमाखू सूंघा करती थी। तमाखूको एक लोहेकी डिवियामें रखनेसे और उसे वारवार सूंघनेसे वह वीमार पड़ गई। जव डाक्टरने उसकी परीक्षा की तो जान पड़ा कि उसे शीशेका विप चढ़ गया है। उसके मर जानेपर मालूम हुआ कि टीनकी डिवियाका विप तमाखूमें आजानेसे यह दुर्घटना हुई है।

मलेरिया—अभी मद्रासमें मलेरिया कॉन्फरेन्सका अधिवेशन हुआ था। उसमें वहुतसे विद्वानोंने यह वात कही थी कि मलेरियाके वृद्धिका कारण दरिद्रता है। तव तो भारत सरीखे अभागे देशसे मलेरियाका नष्ट होना असंभव ही है।

पवित्र, असली, २० वर्षका आजमूदा, सैंकडों प्रशंसा पत्र प्राप्त,
प्रसिद्ध हाजमेकी, अक्सीर दवा,

फायदा न करे तो दाम वापिस।

यह नमक सुलेमानी पेटके सब रोगोंको नाश करके पाचनशक्तिको बढ़ाता है जिससे भूख अच्छी तरह लगती है, भोजन पचता है और दस्त साफ होता है। आरोग्यतामें इसके सेवनसे मनुष्य बहुतसे रोगोंसे बचा रहता है। इसके सेवनसे हैजा, प्रमेह, अपच, पेटका दर्द, वायुशूल, संग्रहणी, अतीसार बवासीर, कब्ज, खट्टी डकार, छातीकी जलन, बहुमूत्र, गठिया, खाज, खुजली, आदि रोगोंमें तुरन्त लाभ होता है। बिच्छू, भिड़, बरोंके काटनेकी जगह इसके मलनेसे लाभ होता है। स्त्रियोंकी मासिक खराबीकी यह दुरुस्ती करता है। बच्चोंके अपच दस्त होना, दूध डालना आदि सब रोगोंको दूर करता है। इससे उदरी जलोदर, कोष्टवृद्धि, यकृत्, प्लीहा, मन्दाग्नि, अम्लशूल और पित्तप्रकृति आदि सब रोग भी आराम होते हैं। अतः यह कई रोगोंकी एक दवा सब गृहस्थोंको अवश्य पास रखनी चाहिये। व्यवस्था पत्र साथ है। कीमत फी शीशी बड़ी ॥) आठ आना। तीन शी० १।=) छह शी० २॥) एक दर्जन ५) डांकखर्च अलग।

दद्रुदमन—दादकी अक्सीर दवा। फी डिब्बी।) आना।

दन्तकुसुमाकर—दांतोंकी रामबाण दवा। फी डिब्बी।) आना।

नोट—हमारे यहां सब रोगोंकी तत्काल गुण दिखानेवाली दवाएं तैयार रहती हैं। विशेष हाल जाननेको बड़ी सूची मंगा देखो।

मिलनेका पताः—

चंद्रसेन जैनवैद्य—इटावा।

लीजिये ! घर बैठे बम्बईकी सब वस्तुएं ।

स्वदेशी पवित्र काश्मीरकी केशर, ऊनी तथा सूती कपड़ा, बरतन, घड़ी, छतरी, अतर, बढ़िया अगरबत्ती, तेल, दवाइयां, किराना, केशरकी गोलियां, गंजीफ्राक, लवंडर, ग्रामोफोन आदि सब तरहकी वस्तुएं बाजारसे किफायतके साथ खरीद कर उचित कमीशनपर भेजते हैं । ग्राहकोंको एक वक्त माल मंगाकर आजमाना चाहिये । जो महाशय रेल्वे द्वारा माल मंगाना चाहें उन्हें चौथाई कीमत पहले भेजनी चाहिये । ग्राहकोंको अपना पता ठीक २ मय पोष्ट और जिलेकें लिखना चाहिये ।

क्यों साहब !

क्या आपको अपने अमूल्य नेत्रोंकी रक्षा करनी है ? यदि करनी हो तो नीचे लिखे शुरमोंमेंसे एक दो शीशी अवश्य मँगाइये.

काला शुरमा नं० १ यह शुरमा हमेशाह नेत्रोंमें लगानेसे सब रोग वा आंखोंकी गर्मी नष्ट करके ज्योतिको बढ़ाता है. मूल्य आधे तोलेकी शीशीका.... .... ॥)

काला शुरमा नं० २ इस ठंडे शुरमेको प्रातःकाल और सोते समय लगानेसे नेत्रोंके सब रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं. की. आधे तोलेकी शीशीका .... १)

काला शुरमा नं० ३ यह शुरमा बहुत बढ़िया और ठंडा है । इससे नेत्रोंके जाले और छांटे कटकर सब रोग नष्ट हो जाते हैं । आधे तोलेके.... .... २॥)

नयनामृत अर्क नं० ४ इसको सलाईसे दिनरातमें तीन चार वार लगानेसे नं० १ के मुवाफिक गुण करता है. मूल्य एक शीशी ।=)

किसनलाल छोगालाल कमीशन एजेन्ट.

ठि० चन्दाबाड़ी, गिरगांव बम्बई.